



THE TIMES OF INDIA

Date: 02-06-17

GDP slowdown

Demonetisation's fallout has hurt the economy but there are reasons to be optimistic



India's economy, or gross domestic product, grew a disappointing 6.1% in the January-March quarter of 2016-17. This growth rate however was not surprising. A deceleration in the pace of economic growth was evident from the beginning of the financial year. This was worsened by the disruption on account of demonetisation. Despite a slowdown in economic growth some positive features such as macroeconomic stability are reasons to remain optimistic. But they need to be complemented by a sharper approach to economic policy making. This will put India on an elevated economic trajectory.

The highlight of January-March quarter data is that the widely anticipated fallout of demonetisation showed up. Sift the data and what is apparent is that agriculture was a saving grace on account of a good monsoon last year, and government spending shored up consumption. But it is worrisome that construction, a key provider of jobs for surplus rural labour, shrunk by 3.7%. Demonetisation appears to have taken a toll here. Other areas in the economy's service sector such as trade have also been adversely affected by demonetisation. Consequently, the quarterly growth in gross value added was just 5.6%, the fourth consecutive quarter which witnessed a slowdown. GDP data also showed that some of the longer term problems continue to cast a shadow on the economy.

The anaemic pace of increase in bank credit and a contraction in fresh investments checked economic momentum. Fixed investment as a proportion of GDP has been declining which means demand from consumers is the main driver of economic momentum. This feature is linked to troubles of banks. Indebted corporates have not been able to service their loans to banks, which has led to the latter's problems of bad loans – making banks risk averse when it comes to disbursing fresh loans. The end result of these enduring problems is that the economy is functioning below potential.

Looking ahead, there is reason to be optimistic, as some of the problems on account of demonetisation have faded following the introduction of new currency. But other enduring problems need to be forcefully tackled. The recent ordinance empowering RBI to deal with bad loans needs to be followed through. Government should also be ready to recapitalise banks that have to take a hit on account of resolving bad loans. Once health of banks improves, the Indian economy will be on a firmer footing.

दैनिक जागरण

Date: 02-06-17

सुप्रीम कोर्ट आगे आए



पशुओं की खरीद-फरोख्त को लेकर केंद्र सरकार की अधिसूचना पर केरल उच्च न्यायालय ने जिस तरह यह कहते हुए हस्तक्षेप करने से इन्कार किया कि कोई ऐसा नियम नहीं बना है कि मवेशियों के वध या फिर उनके मांस सेवन पर पाबंदी लगाई जा रही है उससे यही स्पष्ट हुआ कि इस मसले पर किस तरह लोगों को बरगलाने के साथ राजनीतिक रोटियां सेंकी जा रही हैं। इस पर भी गौर किया जाना चाहिए कि केरल उच्च न्यायालय ने अपने फैसले में यह तो कहा ही कि नए नियमों से कोई संवैधानिक उल्लंघन नहीं हुआ है, इस पर हैरानी भी जताई कि मद्रास उच्च न्यायालय ने केंद्र सरकार की ओर से जारी अधिसूचना पर

रोक लगा दी है। ध्यान रहे कि मद्रास उच्च न्यायालय ने केंद्र सरकार की अधिसूचना पर रोक लगाने के साथ ही यह भी कहा था कि कोई किसी के खाने की आदत को तय नहीं कर सकता। स्पष्ट है कि केरल उच्च न्यायालय के फैसले के बाद यह सवाल उठेगा ही कि क्या उसके पड़ोसी उच्च न्यायालय ने पशुओं को बेचने-खरीदने संबंधी अधिसूचना को सही तरह से जांचा-परखा ही नहीं? निःसंदेह एक सवाल यह भी उठेगा कि क्या न्यायाधीश संविधान की रोशनी में फैसला सुनाने के बजाय अपनी सोच के हिसाब से निर्णय दे देते हैं? ऐसे किसी सवाल की गुंजाइश इसलिए भी बन गई है, क्योंकि गत दिवस ही राजस्थान उच्च न्यायालय ने यह सुझाव दिया कि गाय को राष्ट्रीय पशु घोषित किया जाना चाहिए।

चूंकि राजस्थान उच्च न्यायालय के न्यायाधीश सुझाव देने तक ही सीमित रहे इसलिए उसका एक सीमित महत्व ही है, लेकिन एक ही मसले पर मद्रास और केरल उच्च न्यायालय के विरोधाभासी फैसलों के बाद यह तय है कि मामला सुप्रीम कोर्ट तक पहुंचेगा। उचित यह होगा कि सुप्रीम कोर्ट इस मसले का निपटारा प्राथमिकता के आधार पर करे ताकि केंद्र सरकार की अधिसूचना के बहाने जो अनावश्यक राजनीति हो रही है उस पर विराम लगे और साथ ही आम जनता और खासकर मीट एवं चमड़ा कारोबार में लगे लोग किसी दुविधा या संशय में न रहें। सुप्रीम कोर्ट के दखल की जरूरत इसलिए भी है, क्योंकि पशुओं की खरीद-विक्री के नए नियम उसके ही आदेश के अनुपालन का हिस्सा हैं। बेहतर हो कि सुप्रीम कोर्ट इसकी गहन समीक्षा करे कि पशुओं को क्रूरता से बचाने के लिए उनको बेचने-खरीदने के जो नए नियम केंद्रीय पर्यावरण मंत्रालय ने एक अधिसूचना के जरिये जारी किए उनमें कहीं कोई विसंगति तो नहीं? इस समीक्षा के दौरान राज्यों के अधिकारों के कथित उल्लंघन के मसले के साथ ही मीट एवं चमड़ा व्यवसाय की संभावित परेशानियों का तो संज्ञान लिया ही जाना चाहिए, यह भी देखा जाना चाहिए कि पशुओं की देसी नस्लों का संरक्षण-संवर्द्धन कैसे हो और उन्हें क्रूरता से कैसे बचाया जाए? सुप्रीम कोर्ट के समक्ष यह सवाल भी होगा कि आखिर पशु बाजार के नियमन की जरूरत है या नहीं और अगर है तो उसकी पूर्ति कैसे की जा सकती है? इन सवालों का परीक्षण करते समय गाय के प्रति धार्मिक-सांस्कृतिक मान्यताओं को भी ध्यान में रखना होगा, क्योंकि कुछ लोग गोमांस खाने की जिद पकड़े हुए हैं। इस हठधर्मिता का उपचार समय की मांग है।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 02-06-17

आधे-अधूरे उपाय नहीं

केंद्रीय सांख्यिकी कार्यालय ने आर्थिक उत्पादन के जो ताजातरीन आंकड़े जारी किए हैं उनकी गंभीरतापूर्वक विवेचना करने की आवश्यकता है। सरकार के लिए अवसर है कि वह इसे चेतावनी के रूप में ले, वहीं निजी निवेश और व्यापक आर्थिक वृद्धि में भारी गिरावट के रुख के चलते भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) को भी मौद्रिक नीति को लेकर अपने मौजूदा रुख पर पुनर्विचार करना चाहिए। वर्ष 2016-17 के पूर्ण वर्ष के लिए वृद्धि 7.1 फीसदी की दर पर जताई गई। उसके कुछ हिस्से के लिए वित्त वर्ष की पहली तिमाही में आंकड़ों में सकारात्मक संशोधन भी जिम्मेदार रहा। वर्ष 2016-17 की चौथी तिमाही में वृद्धि दर घटकर 6.1 फीसदी रह गई। पहली तिमाही में सकारात्मक संशोधन के बाद स्थिति बताती है कि अर्थव्यवस्था अपनी गति काफी हद तक खो चुकी है।

आर्थिक गति में इस गिरावट की प्राथमिक वजह काफी हद तक यह है कि निजी निवेश में सुधार नहीं हो सकता है। इसके परिणामस्वरूप ही सकल स्थायी पूंजी निर्माण का जीडीपी में योगदान और कम हो गया है। इस मामले में आर्थिक सिद्धांत एकदम स्पष्ट बताता है कि निवेश संबंधी आर्थिक समस्याएं कैसे पैदा होती हैं। ऐसा तब होता है जब वास्तविक ब्याज दर बहुत उंची होती है। ऐसे में सिद्धांत यही सुझाता है कि बीते वर्षों की तुलना में मुद्रास्फीति में गिरावट के बावजूद बैंकों की वास्तविक ऋण दर में पर्याप्त कमी नहीं आई। यह सच है कि केंद्रीय बैंक ने अब सरकार के साथ एक समझौता किया है जिसके तहत अब वह मुद्रास्फीति के निर्धारण तक सीमित रहेगा, न कि वृद्धि दर पर। यह संस्थागत स्वायत्तता की दृष्टि से एक अहम कदम है और इसे नष्ट नहीं किया जाना चाहिए। परंतु आरबीआई की मौद्रिक नीति समिति जो अब नीतिगत दर तय करने का काम करती है, उसे इस बात पर भी विचार करना चाहिए कि क्या वह सुव्यवस्थित ढंग से मुद्रास्फीति का कमतर आकलन कर रही है कि उसमें गिरावट आई है और आगे और गिरावट आएगी। हाल ही में अर्थशास्त्री साजिद चिनाय ने दलील दी थी कि बीते वर्षों में मुद्रास्फीति में निरंतर गिरावट आती देखी गई है और वह जताए गए अनुमान से नीचे ही रही है। शायद ऐसा इसलिए है क्योंकि खाद्य कीमतों में इजाफे की उम्मीद कम हुई है, शायद मूल मुद्रास्फीति में उम्मीद से अधिक स्थायित्व भरी गिरावट आ रही है। जिससे पता चल रहा है कि अर्थव्यवस्था में धीमापन है। चाहे जो भी हो लेकिन मुद्रास्फीति की चिंताओं के चलते आरबीआई को अधिक हिचकिचाहट का प्रदर्शन नहीं करना चाहिए।

आरबीआई को यह बात भी ध्यान रखनी चाहिए कि नीतिगत बदलाव की व्यवस्था भी दुरुस्त नहीं है। बल्कि इसमें कई खामियां हैं। अपने रुख में बदलाव लाना या दरों में 25 आधार अंक की कटौती करना लुभाने वाला काम हो सकता है लेकिन केवल इतना पर्याप्त नहीं होगा। केवल एक बड़ी कटौती ही ऋण और निवेश पर उचित प्रभाव डालेगी। आधे-अधूरे उपाय नाकाम साबित होंगे। जाहिर सी बात है नीतिगत बदलाव की व्यवस्था में सुधार के साथ ही इस दिशा में भी ध्यान देने की आवश्यकता है। खासतौर पर इसका तात्पर्य यह हुआ कि बैंकों को यह समझने की आवश्यकता है कि वे ऋण दे सकते हैं। फिलहाल ऐसा नहीं हो रहा है। जबकि वे अभी भी फंसे हुए कर्ज की समस्या से जूझ रहे हैं। अच्छी बात यह है कि बैंकों की बैलेंस शीट में सुधार करना अब एक बार फिर सरकार के एजेंडे में नजर आ रहा है। लेकिन इस समस्या से युद्ध स्तर पर निपटने की आवश्यकता है केवल तभी निवेश और वृद्धि में सुधार संभव हो सकेगा।

Date: 01-06-17

Delhi to Berlin

Current turmoil in Eurasian politics demands that India and Germany reconnect. The ball is in India's court

If you want to describe the relations between independent India and post-War Germany, the phrase “benign neglect” readily comes to mind. Before the Second World War, though, there was a lot more going on between Indian and German nationalists united by their hostility towards Britain. After the War, India and Germany had a correct but inconsequential relationship. The current turmoil in Eurasian geopolitics — the prospects of an American retrenchment under Donald Trump and the growing assertion of Russia under Vladimir Putin and China under Xi Jinping — demands that Delhi and Berlin reconnect and revitalise their relationship. Prime Minister Narendra Modi and Chancellor Angela Merkel have promised precisely that — that they will deepen their political, economic and security cooperation on the basis of shared values and offer responsible leadership on regional and global problems, ranging from maritime order to climate change.

Sceptics would say the words from India and Germany on building a strategic relationship have not been matched by deeds. One major constraint has been India's legacy of non-alignment and Germany's deference to American leadership. Both nations were hesitant powers — India is tied down by a pretentious moralpolitik and Germany by the genuine expiation of the guilt from World War II. That is changing now. Under Modi, India's aspirations to become a leading power have become more pronounced. Meanwhile, Merkel is under a growing compulsion to take a larger share of global burdens. As Britain walks out of the European project and “America First” isolationism threatens the global economic and political order, there are growing expectations of the German leadership. Merkel's remark, that Europe can no longer rely on the Anglo-American leadership and must take charge of its own destiny, resonates in India.

Modi had every reason to cheer Chancellor Merkel in building a globally engaged Germany and a more cohesive Europe that could partner India in structuring a stable balance of power in Eurasia and the Indo-Pacific theatres. So far, so good. But the problem begins when it comes to concrete issues relating to India's economic and security cooperation with Germany and Europe. If the prickliness of Delhi's Commerce Ministry alienates India's trade partners, the Defence Ministry relishes slamming the door on the face of all those seeking strategic engagement with India. Despite the massive centralisation of power in the last three years, the PM seems unable to force his trade and defence negotiators to follow through on his expansive internationalist rhetoric.

In his talks with Merkel, Modi has promised to renew the conversation on free trade and investment protection with Europe and on defence industrial collaboration. Germany and Europe will not hold their breath for too long. For, the pace of Eurasian tectonic movement may be much faster than the response time of the Indian bureaucracy.



Date: 01-06-17

Cow slaughter and the Constitution

The government's new set of rules on cattle sale is unlikely to withstand judicial scrutiny

Over the last few days, the Central government's new Prevention of Cruelty to Animals (Regulation of Livestock Market) Rules have run into strong headwinds. These rules, which effectively prohibit the sale of cows and buffaloes for slaughter at animal markets, and are therefore perceived as imposing an indirect beef ban, have been the subject of protests in Kerala and Tamil Nadu, and have drawn strong condemnation from West Bengal Chief Minister Mamata Banerjee. With the Madras High Court on Tuesday staying the rules for four weeks, the battle has swiftly moved to the court as well. And with this, apart from the political turmoil, legal and constitutional fault lines have also been reopened, causing much uncertainty about what the outcome will be.

In the Constituent Assembly

This dispute has a history, which goes back to the founding of the Republic. During the framing of the Constitution, the subject of cow slaughter was one of the most fraught and contentious topics of debate. Seth Govind Das, a member of the Constituent Assembly, framed it as a "civilisational [problem] from the time of Lord Krishna", and called for the prohibition of cow slaughter to be made part of the Constitution's chapter on fundamental rights, on a par with the prohibition of untouchability. In this, he was supported by other members of the Constituent Assembly, such as Shibban Lal Saksena, Thakur Das Bhargava, Ramnarayan Singh, Ram Sahai, Raghu Vira, R.V. Dhulekar and Chaudhari Ranbir Singh. Proponents of a cow slaughter ban advanced a mix of cultural and economic arguments, invoking the "sentiments of thirty crores of population" on the one hand, and the indispensability of cattle in an agrarian economy on the other. There was one small snag, however: fundamental rights were meant to inhere in human beings, not animals. After much debate, the Constitution's Drafting Committee agreed upon a compromise: prohibition of cow slaughter would find a place in the Constitution, but not as an enforceable fundamental right. It would be included as a "Directive Principle of State Policy", which was meant to guide the state in policymaking, but could not be enforced in any court. Furthermore, in its final form, this Directive Principle (Article 48 of the Constitution) carefully excluded the question of religious sentiments. Nor did it require the state to ban cow slaughter outright. Instead, under the heading "Organisation of Agriculture and Animal Husbandry", Article 48 says the state shall "organise agriculture and animal husbandry on modern and scientific lines and shall, in particular, take steps for preserving and improving the breeds, and prohibiting the slaughter, of cows and calves and other milch and draught cattle." Members of the Constituent Assembly found these incremental compromises both unprincipled and unsatisfactory. Shibban Lal Saksena objected to such "back door" tactics, and asked why the Drafting Committee was "ashamed of providing for [the prohibition of cow slaughter] frankly and boldly in so many plain words". Z.H. Lari, one of the Muslim representatives in the Assembly, stated that his community would not stand in the way of the majority's desire, but nonetheless asked that the majority "express itself clearly and definitely", so that Muslims could know exactly what the position was on cow slaughter. However, clear and definite expression on the issue of cow slaughter was one thing that the Assembly was unwilling to commit to. Article 48, a provision that was grafted out of a compromise that left nobody satisfied, came into being with the rest of the Constitution, on January 26, 1950.

In the Supreme Court

The fundamental disingenuousness that underlay Article 48 was to be repeated, many times over, in constitutional litigation before the Supreme Court. Right from 1958, the Supreme Court was asked to adjudicate upon the constitutional validity of cattle slaughter bans passed by various States. Petitioners before the court argued that a prohibition of cow slaughter violated their rights to trade and business, and also their right to freedom of religion. The Supreme Court rejected these arguments and upheld the laws, but it did so by focussing its reasoning entirely on — apparent — economic considerations. Detailed analyses of agricultural output and milch yields give these judgments a strained, almost unreal quality. Much like the Drafting Committee, it was as if the court was unwilling to admit — and to uphold — the possibility of non-economic considerations behind such laws, as though this would shatter the thin facade of secularism to which the Constitution remained (ostensibly) committed.

A possible answer

The disingenuousness that marked the Constituent Assembly debates, that was written into final text of Article 48, and that has been inscribed into 50 years of the Supreme Court’s jurisprudence, has found its latest avatar in the present rules. This time, the Central government has invoked a Supreme Court order on cattle smuggling across the Nepal border, as well as a 1960 law, the Prevention of Cruelty to Animals Act, as its justification. However, the Supreme Court’s order makes no mention of cattle slaughter, and a reading of the Act demonstrates clearly that it does not contemplate prohibiting animal slaughter per se. Not only does it specifically exempt slaughter of animals for food, it also provides for advice on the design of slaughterhouses, so that “unnecessary pain or suffering, whether physical or mental, is eliminated in the pre-slaughter stages as far as possible.”

Now, under our legal and constitutional system, an executive notification cannot even go beyond the specific terms and ambit of the parent law from which it derives its authority. The government’s new rules, however, go even further: by prohibiting the sale of cattle for slaughter at animal markets, they contravene the Prevention of Cruelty to Animals Act by specifically forbidding what that Act permits. There is a strong argument, therefore, that the rules are invalid. Furthermore, if indeed the purpose of the rules was to prevent cruelty to animals, then why is their scope limited only to cattle — and to camels? It is true that the government is always at liberty, for reasons of administrative convenience or otherwise, to choose and categorise the subjects to whom its actions will apply; but while under-inclusiveness is not generally a ground for a court to invalidate executive action, in the present case, there seems no rational basis for limiting the reach of an anti-cruelty regulation to only some animals. At the very least, in law, this casts serious doubts about the government’s motivation and justification for its rules. One might wonder why the Central government chose to take such a momentous step armed with such a flimsy defence. The only possible answer seems to be that had it gone with the traditional, economic justification for an (effective) ban on cow slaughter, it would have run up against an insurmountable constitutional difficulty: under our constitutional scheme, “agriculture” and “the preservation of stock” fall within the exclusive legislative competence of the States. This is the reason why, historically, different cow slaughter laws have been passed by different States. It is to get around this that the Central government has invoked the Prevention of Cruelty to Animals Act, a subject on which both the Centre and States can make laws.

What this has resulted in is a badly drafted set of rules, which is unlikely to withstand judicial scrutiny. It is also, however, an opportunity for citizens — and courts — to think once again whether the prescription of food choices is consistent with a Constitution that promises economic and social liberty to all.

Gautam Bhatia is a Delhi-based lawyer

इस दोस्ती को कितनी ऊंचाई मिलेगी

चीन और खासकर पाकिस्तान की ओर रूस के झुकाव की खबरों के बीच भारतीय प्रधानमंत्री की रूसी-यात्रा काफी महत्वपूर्ण हो गई है।

अपनी रूस यात्रा के दौरान प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी आज सेंट पीटर्सबर्ग में रूसी राष्ट्रपति व्लादिमीर पुतिन से मुलाकात करेंगे। इस बहाने भारत और रूस एक बार फिर अपने उस रिश्ते में नई जान फूंकने की कोशिश करेंगे, जिसे पुनर्जीवित करने की सख्त जरूरत है। आम तौर पर यही कहा जाता है कि भारत और रूस की दोस्ती काफी पुरानी व टिकाऊ है। इस रिश्ते में शीत युद्ध के बाद भी गर्मजोशी कायम रही। लेकिन अब कुछ ऐसे संकेत मिल रहे हैं, जो इस संबंध

को तत्काल सुधारने की वकालत करते हैं।

प्रधानमंत्री मोदी भारत और रूस के बीच होने वाली सालाना बैठक में भाग लेने के लिए रूस में हैं। उम्मीद है कि रूसी राष्ट्रपति व्लादिमीर पुतिन के साथ वह यहां एक महत्वाकांक्षी विज्ञान डॉक्यूमेंट जारी करेंगे, जो आने वाले दशकों में दोनों देशों के बीच आर्थिक सहयोग के एजेंडे को दर्ज करेगा। मई की शुरुआत में व्यापार, आर्थिक और सांस्कृतिक सहयोग पर दोनों देशों के अंतर-सरकारी आयोग (आईआरआईजीसी-टीईसी) की भी बैठक हुई थी, जिसमें असैन्य परमाणु सहयोग, कारोबार और निवेश को लेकर दोनों देशों ने द्विपक्षीय रिश्तों को एक नई गति दी थी। यह अंतर-सरकारी आयोग द्विपक्षीय संबंधों से जुड़े प्रमुख मसलों पर चर्चा का एक महत्वपूर्ण मंच माना जाता है।

बहरहाल, मौजूदा संदर्भ में सबसे अधिक प्राथमिकता पिछले कुछ समय से खस्ता हाल हो रहे आर्थिक रिश्तों को गति देने की है। दोनों मुल्कों ने द्विपक्षीय कारोबार को साल 2025 तक 30 अरब डॉलर तक ले जाने का लक्ष्य तय किया था, मगर साल 2015 तक यह महज 7.8 अरब डॉलर तक ही पहुंच सका। लिहाजा वक्त का ताकना है कि दवा उद्योग, कृषि, खाद्य प्रसंस्करण और ऊर्जा जैसे क्षेत्रों को लक्ष्य करके नए सिरे से नीतियां तैयार की जाएं। इसी तरह, कुडनकुलम परमाणु संयंत्र की दो इकाइयों- यूनिट पांच और छह के लिए तैयार जेनरल फ्रेमवर्क एग्जिमेंट (जीएफए) को भी अंजाम तक पहुंचाना दोनों देशों के लिए जरूरी है। पिछले साल इसमें दो बार समय-सीमा की चूक हो चुकी है। लेकिन



हर्ष वी पंत
 प्रोफेसर
 किंग्स कॉलेज, तंदन

आज हो रही 18वीं भारत-रूस सालाना बैठक में इस पर सहमति बनने की काफी उम्मीद है। वैसे, जरूरत क्षेत्रीय कनेक्टिविटी को बढ़ावा देने के लिए नए प्रयास के तहत उत्तर-पश्चिम अंतरराष्ट्रीय परिवहन कॉरिडोर में भी तेजी लाने की है, जो काफी दिनों से लंबित है।

देखने वाली बात यह है कि यह नई पहल भारत-रूस द्विपक्षीय संबंधों में उभरे राजनीतिक तनाव को किस हद तक कम कर पाती है? असल में, मॉस्को चीन की तरफदारी करते हुए पाकिस्तान को यह आश्वासन दे चुका है कि वह उसे विश्व समुदाय में अलग-थलग नहीं पड़ने देगा। नई दिल्ली इससे स्वाभाविक तौर पर चिंतित है। गोवा में साल 2016 की ब्रिक्स बैठक में भी रूस ने भारत की उस मांग का समर्थन नहीं किया था, जिसमें उसने अपने खिलाफ हो रही आतंकी गतिविधियों के लिए पाकिस्तानी जमीन पर पल रहे दो आतंकी संगठनों को जिम्मेदार ठहराते हुए उन पर कार्रवाई की बात कही थी। ऐसा करके रूस ने जाहिर तौर पर पाकिस्तान को एक असुविधाजनक स्थिति में आने से बचा लिया था।

रूस के रुख में आए इस बदलाव को अफगानिस्तान में भी साफ-साफ महसूस किया जा सकता है। साल 1979 के सोवियत हमले के लगभग चार दशकों के बाद रूस एक बार फिर अफगानिस्तान में अपनी अहम भूमिका देख रहा है। उसने अफगानिस्तान के भविष्य पर चर्चा करने के लिए बीती फरवरी में एक कॉन्फ्रेंस भी मॉस्को

में बुलाई थी, जिसमें भारत, ईरान, पाकिस्तान, चीन और अफगानिस्तान के प्रतिनिधि शामिल हुए थे। इस मसले पर यह उसकी दूसरी बैठक थी। इससे पहले दिसंबर में भी वह चीन और पाकिस्तान के साथ मिलकर तीन देशों की एक कॉन्फ्रेंस कर चुका था। दिसंबर की उस बैठक में तो इस बात पर सहमति भी बन गई थी कि 'काबुल और तालिबान के बीच शांतिपूर्ण बातचीत को गति देने के लिए संयुक्त राष्ट्र द्वारा प्रतिबंधित सूची में से कुछ (तालिबान) नेताओं को हटाने के प्रति लचीला रुख अपनाया जाएगा'।

मुर्फकिन है कि दक्षिण एशिया में पश्चिम के साथ रूस की भू-राजनीतिक प्रतिस्पर्धा को देखते हुए व्लादिमीर पुतिन ने यह सोचा हो कि पाकिस्तान की तरफ उनके झुकाव का यही सबसे सही वक्त है। आने वाले दिनों में अमेरिका और पाकिस्तान के रिश्ते कमजोर पड़ सकते हैं और वैश्विक मामलों के प्रति अपने उदासीन रवैये के कारण अमेरिका की नई सरकार घरेलू मोर्चा पर कई मुश्किलों से दो-चार रहेगी।

रूस-पाकिस्तान रिश्तों को समझने के लिए कई घटनाक्रमों पर गौर करने की जरूरत है। सितंबर, 2016 में मॉस्को और इस्तांबुल में अपना पहला संयुक्त सैन्य-अभ्यास किया था और दिसंबर में क्षेत्रीय मसलों पर उनकी पहली मंत्रणा बैठक हुई थी। रूस ने साल 2014 में पाकिस्तान के खिलाफ हथियार प्रतिबंध उठा लिए थे और इस साल वह उसे चार एमआई-35 एम लड़ाकू हेलीकॉप्टर भी देने वाला है। पाकिस्तान के सैन्य दिवस परेड में भी इस वर्ष रूसी जवानों ने भाग लिया था। और तो और, झिंजियांग को पाकिस्तानी बंदरगाह ग्वादर से जोड़ने वाले चीन-पाकिस्तान आर्थिक गलियारे का रूस समर्थित यूरोशियाई आर्थिक संघ में विलय किया जा सकता है। ये तमाम संकेत तब हैं, जब भारत ने इस महीने की शुरुआत में चीन द्वारा आयोजित 'वन बेल्ट वन रोड' सम्मेलन का बहिष्कार कर दिया था। इस सम्मेलन में गिनती के देश ही शामिल नहीं हुए थे।

ऐसी ही तस्वीरों के बीच नरेंद्र मोदी और व्लादिमीर पुतिन आज मुलाकात कर रहे हैं। भारतीय प्रधानमंत्री शायद यही उम्मीद कर रहे होंगे कि इस मुलाकात से भारत और रूस की दोस्ती एक नए मुकाम पर पहुंचेगी। वह इसमें कितने सफल होते हैं, इसके लिए इंतजार ही करना होगा।
(ये लेखक के अपने विचार हैं)

